बुद्ध धम्म साधना के सार तत्व

अनिच्च, दुक्ख, एवं *अनत्ता* भगवान बुद्ध की शिक्षा में, ये तीन मूल तत्व हैं। यदि आप को वास्तविक *अनिच्च* (अनित्य) बोध होता है, तो आप को अगली कड़ी के रूप में दु:ख (असंतोष) का तथा परम सत्य के रूप में *अनत्ता* (अनात्म) का भी ज्ञान हो जायेगा। इन तीनों को एक साथ समझने में समय लगता है। नि:संदेह, *अनिच्च* वह आवश्यक घटक है, जिसे साधना द्वारा सर्व प्रथम अनुभव करना एवं समझा जाना चाहिए। केवल बौद्ध ग्रन्थ पढ़ लेना अथवा बुद्ध-धम्म का पुस्तक ज्ञान प्राप्त कर लेना ही वास्तविक अनिच्च को समझने के लिए पर्याप्त नहीं होगा, क्योंकि अनुभवात्मक पहलू अनुपस्थित होगा। केवल सतस परिवर्तनशील प्रक्रिया के रूप में, स्वयं के भीतर *अनिच्च* की प्रकृति को अनुभव करने तथा समझने के माध्यम से ही, जिसप्रकार बुद्ध ने चाहा कि आप इसे समझें, आप *अनिच्च* को समझ सकते हैं। यह *अनिच्च*-बोध उन व्यक्तियों द्वारा भी विकसित किया जा सकता है, जिन्हें बौद्ध ग्रन्थों का कुछ भी ज्ञान न हो, जैसा कि बुद्ध के समय में भी होता था।

अनिच्च को समझने के लिये निष्ठा एवं कर्मठता पूर्वक अष्टांगिक आर्य मार्ग का पालन करना होगा, जिसे *सील*, समाधि, तथा *पञ्ञा* के तीन चरणों में विभाजित किया गया है। *सील* (शील), सदाचार या नैतिक जीवन समाधि का आधार है – समाधि, अर्थात मन को वश में करके चित्त एकाग्रता प्राप्त करना। जब समाधि अच्छी होती है, केवल तभी व्यक्ति *पञ्ञा* (प्रज्ञा) विकसित कर सकता है। अत:, *सील* एवं समाधि *पञ्ञा* के लिए आवश्यक परिस्थितियां हैं। *पञ्ञा* का अर्थ *विपस्सना* (विपश्यना) साधना के माध्यम से *अनिच्च, दुक्ख* एवं *अनत्ता* का ज्ञान है।

चाहे कोई बुद्ध उत्पन्न हुये हों या नहीं, मनुष्य लोक में, शील और समाधि का अभ्यास विद्यमान होता है। वास्तव में, सभी धार्मिक आस्थाओं की ये विशेषतायें होती हैं। परन्तु अन्तिम लक्ष्य के, अर्थात दु:ख के अंत के ये माध्यम नहीं हैं। दु:ख के अंत की अपनी इस खोज में, राजकुमार सिद्धार्थ को इस बात का पता चल गया और वे तब तक प्रयास करते रहे, जब तक उन्होंने वह मार्ग ढूंढ नहीं निकाला, जो दु:ख के अंत की ओर ले जाता है। छ: वर्षों के कठिन परिश्रम के पश्चात उन्होंने बाहर निकलने का मार्ग ढूंढ निकाला, पूर्ण रूप से जागृत हो गये और तब उन्होंने मनुष्यों एवं देवताओं को दु:ख के अंत की ओर ले जाने वाले इस मार्ग का अनुगमन करना सिखाया।

इस संबंध में मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि प्रत्येक कार्य, चाहे वह कायिक हो, वाचिक हो अथवा मानसिक, एक प्रकार की कृया-शक्ति, *संखार* (संस्कार) या *कम्म* (कर्म) प्रत्येक व्यक्ति के लिये पीछे छोड़ देता है, जो जीवन को बनाए रखने के लिए ऊर्जा की आपूर्ति का स्रोत बनता है और जो नि:संदेह दु:ख एवं मृत्यु की ओर ले जाता है। *अनिच्च, दुक्ख* एवं *अनत्ता* के ज्ञान में निहित शक्ति के विकास के द्वारा ही व्यक्ति इन *संखारों* से, जो उसके व्यक्तिगत खाते में जमा होते जाते हैं, स्वयं को मुक्त करने में सक्षम हो पाता है। यह प्रक्रिया *अनिच्च* के सही ज्ञान के साथ प्रारंभ होती है, जब कि समय समय पर, दिन प्रतिदिन, एक ओर तो नूतन *कम्मों* का और संचयन होता रहता है और दूसरी ओर, साथ ही साथ, जीवन को बनाए रखने वाली ऊर्जा की आपूर्ति का ह्रास भी। अत: अपने इन सभी *कम्मों* से मुक्त हो पाना एक या अधिक जन्मों के जीवन पर्यन्त प्रयासों का विषय है।

वह व्यक्ति जो सभी *संखारों* (या *कम्मों*) से मुक्ति पा लेता है, वह दु:ख के अंत को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि तब उसमें जीवन को किसी भी रूप में बनाए रखने के लिए आवश्यक जीव-ऊर्जा के रूप में उसके कोई भी *संखार* अवशेष नहीं रहते। बुद्ध एवं अर्हतों को दु:ख का यह अंत उनके जीवन की समाप्ति पर प्राप्त होता है, जब वे परिनिर्वाण में पारित होते हैं। आज हमारे लिए, जो *विपस्सना* साधना कर रहे हैं, इतना ही पर्याप्त है कि हम

अनिच्च को अच्छी तरह से समझें तथा आर्य पद अर्थात *सोतापत्ति* पुद्गल पद (या निर्वाण के प्रथम चरण) को प्राप्त करें, जिसके बाद व्यक्ति को दु:ख के अंत के लिए सात जन्मों से अधिक नहीं जीना पड़ेगा।

केवल किसी बुद्ध के माध्यम से अथवा उनके परिनिर्वाण के पश्चात उनकी शिक्षा के माध्यम से ही, जब तक कि अष्टांगिक आर्यमार्ग तथा *बोधि पक्खीया धम्मा* के ३७ घटकों से संबंधित पहलू अक्षत हों, एवं आकांक्षी के लिए उपलब्ध हों, तब तक ही *दुक्ख* एवं *अनत्ता* को समझने का द्वार खोलने वाले तथा अंतत: *दुक्ख* के अंत की ओर ले जाने वाले, इस *अनिच्च* को प्राप्त किया जा सकता है।

विपस्सना साधना में प्रगति के लिए, साधक को यथासंभव निरंतर ही *अनिच्च* बोध रखना पड़ेगा। भिक्षुओं के लिये बुद्ध का परामर्श है कि वे सभी मुद्राओं में, अर्थात चाहे वे बैठे हों, खड़े हों, चल रहे हों, या लेटे हों, उन्हें *अनिच्च, दुक्ख* अथवा *अनत्ता* के प्रति जागरूकता बनाए रखने का प्रयास करते रहना होगा। *अनिच्च* के प्रति, इसी प्रकार *दुक्ख* एवं *अनत्ता* के प्रति जागरूकता में निरंतरता ही सफलता का रहस्य है। अपनी अंतिम श्वास लेने तथा परिनिर्वाण में पारित होने के ठीक पहले उनके अंतिम शब्द इस प्रकार थे –

वय धम्मा संखारा, अप्पमादेन सम्पादेथ।

सभी संस्कारों में क्षय निहित है। अप्रमाद के साथ (कर्मठता से) (स्वयं के उद्धार के लिये) परिश्रम करो।
– दीघ निकाय, सुत्त १६ (महापरिनिब्बान सुत्त)[1]

वास्तव में, पैंतालीस वर्षों की अवधि में उनके सभी शिक्षणों का सारांश यही है। यदि आप सभी *संखारों* में निहित *अनिच्च* के प्रति जागरूकता बनाये रखेंगे, तो उचित समय पर लक्ष्य तक पहुंचना सुनिश्चित है। उसके पहले जैसे जैसे *अनिच्च* के ज्ञान में आप विकसित होते हैं, वैसे वैसे 'प्रकृति का सत्य क्या है' उसमें आपकी अंतर्दृष्टि बढ़ती ही जाएगी। यहां तक कि अंतत: आप को इन तीनों लक्षणों, अर्थात *अनिच्च, दुक्ख* एवं *अनत्ता* के विषय में कोई भी किसी भी प्रकार का संदेह नहीं रहेगा। केवल तभी ही, आप अपने ईष्ट लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने की स्थिति में होंगे।

अब जब कि आप *अनिच्च* को प्रथम अनिवार्य घटक के रूप में जानते हैं, तो आप को स्पष्टता के साथ तथा व्यापक रूप से यह समझने का प्रयास करना चाहिये कि *अनिच्च* क्या है, – जिससे कि आप साधना में अथवा विचार-विमर्श के समय भ्रमित न हों। *अनिच्च* का वास्तविक अर्थ क्षय है – अर्थात, ब्रह्मांड की प्रत्येक वस्तु में, चाहे वह चेतन हो या अचेतन, अनित्य या क्षय की प्रवृत्ति।

वर्तमान पीढ़ी के लिए अपने स्पष्टीकरण का काम सरल बनाने के लिए मैं आइजैक एसिमॉव (Isaac Asimov) की 'परमाणु के भीतर' (Inside the Atom) नामक पुस्तक के 'परमाणु अन्तर्वस्तु' (Atomic Contents) नामक अध्याय के आरंभिक वाक्यों की ओर, तथा किसी भी जीवित प्राणी, जैसे मनुष्य के शरीर के सभी भागों में एक साथ होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाओं के विषय में पृष्ठ १५९ पर लिखी बातों के एक हिस्से की ओर, ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा।

इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिये कि विभिन्न होते हुए भी सभी वस्तुएं 'परमाणु' (atom) नामक सूक्ष्म कणों से बनी हैं, इतना पर्याप्त होगा। विज्ञान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि ये परमाणु उदय एवं विघटन या

1 भिक्षु धर्मरक्षित (१९५८) महापरिनिब्बानसुत्तं; ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृ० १७३

परिवर्तन की स्थिति में होते हैं। तदनुसार, हमें बुद्ध की इस अवधारणा को स्वीकार कर लेना चाहिए कि सभी *संखार अनिच्च*, अर्थात क्षय या परिवर्तन के अधीन हैं।

किन्तु *अनिच्च* के सिद्धांत की व्याख्या करते समय बुद्ध ने उस प्रकृया से प्रारंभ किया, जिससे भौतिक पदार्थ की संरचना होती है, तथा बुद्ध की जानकारी में भौतिक पदार्थ, आधुनिक विज्ञान द्वारा अन्वेषित परमाणु की तुलना में अत्यंत सूक्ष्मतर है। बुद्ध ने अपने शिष्यों को अवगत कराया कि प्रत्येक ऐसी वस्तु जिसका इस ब्रह्माण्ड में अस्तित्व है, चाहे वह चेतन हो या निर्जीव, कलापों (परमाणुओं से भी अधिक सूक्ष्मतर कणों) से बनी है, तथा प्रत्येक कलाप आविर्भूत होने के साथ साथ नष्ट भी हो जाता है। प्रत्येक कलाप प्रकृति के आठ तत्वों, अर्थात्, *पथवी* (पृथ्वी), *आपो (*जल), *तेजो (*अग्नि), *वायो (*वायु), *वण्ण (*वर्ण), गन्ध, रस, ओज (पोषक) (अर्थात्, ठोस, तरल, गर्मी, गति, रंग, गंध, स्वाद एवं पोषक) से गठित एक पुञ्ज है। पहले चार को महाभूत कहा जाता है, जो किसी भी कलाप में प्रमुख होता है। अन्य चार उत्पाद रूप सहायक मात्र हैं, जो पूर्वोक्त के साथ उत्पन्न होते हैं तथा उन्हीं पर निर्भर करते हैं। भौतिक स्तर पर कलाप एक सूक्ष्मतम कण है, जो आज के विज्ञान की पहुंच से अभी भी परे है।

ये आठ प्रकृति तत्व (जिनमें केवल व्यावहारिक लक्षण होते हैं) जब एक साथ जुटते हैं, केवल तभी कलाप (भौतिक जगत में सूक्ष्मतम कण) का अस्तित्व गठित होता है। दूसरे शब्दों में, प्रकृति के इन आठ व्यावहारिक तत्वों के एक पल मात्र के सह-अस्तित्व से जो पुञ्ज बनता है, उसको बौद्ध धर्म में एक कलाप के रूप में जाना जाता है। एक कलाप का आकार भारत की गृष्म ऋतु में, एक रथ के पहिये की धूल के एक कण का लगभग १/४६,६५६ वां भाग होता है। एक कलाप का जीवन काल एक क्षण होता है; किसी मनुष्य की आंख की पलक झपकने की अवधि के भीतर एक खरब ऐसे क्षण होते हैं। ये कलाप सतत परिवर्तनशीलता या प्रवाह की स्थिति में होते हैं। *विपस्सना* साधना में विकसित किसी साधक के लिए वे ऊर्जा की एक धारा के रूप में अनुभव किये जा सकते हैं। इस मानव शरीर का वैसा कोई अस्तित्व नहीं है, जैसा कि प्रतीत होता है, किन्तु यह तो भौतिक पदार्थ (रूप) स्कंध तथा जीव-शक्ति (नाम) के सह-अस्तित्व की एक निरंतरता या सातत्य है।

यह जानना कि अपना ही शरीर परिवर्तनशील सूक्ष्म कलापों से बना है, परिवर्तन या क्षय की प्रकृति के सत्य को जानना है। सभी कलापों के प्रज्वलन की स्थिति में, उनके सतत विघटन एवं प्रतिस्थापन के कारण यह परिवर्तन या क्षय (*अनिच्च*) की प्रकृति, अवश्य ही दु:ख की, दु:ख सत्य की पहचान है। जब आप *अनिच्च* (अनित्य) को दु:ख के रूप में अनुभव करते हैं, केवल तभी आप दु:ख सत्य को आत्मसात करते हैं, जो चार आर्य सत्यों में से एक है, जिस पर बुद्ध की शिक्षा में इतना जोर दिया गया है।

ऐसा क्यों? क्योंकि जब आप दु:ख के सूक्ष्म स्वरूप को जान लेते हैं, जिससे कि आप एक पल के लिए भी बच नहीं सकते, तब आप सचमुच में उससे भयभीत होंगे, उससे घृणा करेंगे और अपने इस *नाम-रूप* के अस्तित्व को बनाये रखने के अनिच्छुक हो जायेंगे एवं इसके बाहर निकलने के उपाय ढूढेंगे – ऐसी अवस्था के लिये, जो दु:ख से परे हो, जहां दु:ख का अंत हो। वह दु:ख का अंत कैसा होगा, मनुष्य के रूप में भी आप इसका स्वाद लेने में सक्षम हो जाएंगे, जब आप एक *सोतापत्ति* के स्तर तक पहुंच जायेंगे तथा स्वयं के भीतर *संखार* विहीन निर्वाण पद की शान्ति में जाने के लिये अपनी साधना में अच्छी तरह परिपक्वहो जायेंगे।

जो भी हो, जैसे ही आप अपने दैनिक जीवन की साधना में *अनिच्च* के प्रति जागरूकता बनाए रखने में सक्षम हो जाते हैं, वैसे ही आप को स्वयं पता चलने लगेगा कि आप के भीतर एक अच्छा शारीरिक और मानसिक, दोनों परिवर्तन होता जा रहा है।

विपस्सना साधना प्रारंभ करने से पहले, अर्थात समाधि को एक उचित स्तर तक विकसित करने के पश्चात, साधक को पहले *रूप* (भौतिक पदार्थ) तथा *नाम* (मन और मानसिक गुणों) के सैद्धांतिक ज्ञान से परिचित होना चाहिए। यदि उसने सैद्धांतिक रूप से इसे अच्छी तरह समझ लिया है तथा उसकी समाधि समुचित स्तर तक पहुंच गयी है, तो उसके बुद्ध के शब्दों के सही अर्थों में, *अनिच्च, दुक्ख*, एवं *अनत्ता* को समझने की प्रत्येक संभावना है।

विपस्सना साधना में, व्यक्ति न केवल *रूप* या भौतिक पदार्थ की परिवर्तनशीलता (*अनिच्च*) पर ध्यान केन्द्रित करता है, अपितु *रूप* या भौतिक पदार्थ की परिवर्तन प्रकृया पर प्रक्षेपित *नाम* अर्थात चित्त पर भी। कभी ध्यान केवल *रूप* या भौतिक पदार्थ के अनिच्च पर, तो कभी ध्यान चित्त (*नाम*) पर हो सकता है। जब व्यक्ति *रूप* या भौतिकता के *अनिच्च* की अनुपश्यना करता है, तो उसे पता चलता है कि *रूप* के *अनिच्च* की जागरूकता के साथ साथ उदय होने वाले चित्त भी परिवर्तनशील हैं। उस स्थिति में, आप एक साथ *रूप* एवं *नाम*, दोनों के *अनिच्च* को जान रहे हैं।

अभी तक मैंने जो कहा है, वह शरीर की संवेदनाओं के माध्यम से *रूप* या पदार्थ में परिवर्तन की प्रकृया को समझने के, तथा इन परिवर्तनशील प्रकृयाओं पर निर्भर करने वाले चित्त के *अनिच्च* को समझने के संदर्भ में है। आपको यह भी पता होना चाहिए कि अन्य प्रकार की संवेदनाओं के माध्यम से भी *अनिच्च* को समझा जा सकता है।

अधोलिखित संवेदनाओं के माध्यम से अनिच्च विकसित किया जा सकता है –

(१) चक्षु इंद्रिय का गोचर आकार से संपर्क द्वारा,
(२) कर्णेंद्रिय का ध्वनि से सम्पर्क द्वारा,
(३) घ्राणेन्द्रिय का गंध से संपर्क द्वारा,
(४) जिह्वा इंद्रिय का स्वाद से संपर्क द्वारा,
(५) शरीर इंद्रिय का स्पर्श से संपर्क द्वारा,
(६) मन इन्द्रिय का विचार से संपर्क द्वारा ।

वास्तव में, व्यक्ति छः ज्ञानेन्द्रियों में से किसी के भी माध्यम से *अनिच्च* बोध विकसित कर सकता है। तथापि व्यावहारिक रूप से, हमने पाया है कि सभी संवेदनाओं में, शरीर के घटक अंगों के साथ स्पर्श के संपर्क की संवेदना, परिवर्तन प्रक्रिया की अंतर्मुखी साधना के लिए एक व्यापक क्षेत्र प्रदान करती है। इतना ही नहीं, शरीर के घटक भागों के साथ (आंतरिक कलापों के घर्षण, विकिरण तथा प्रकंपन से उत्पन्न) स्पर्श के संपर्क की संवेदना, अन्य प्रकार की संवेदनाओं की अपेक्षा अधिक अनुभूत्य है, तथा इसी कारण, विपस्सना साधना का आदिकार्मिक (प्रारंभिक या नौसिखुआ साधक) शारीरिक संवेदनाओं में *रूप* या पदार्थ की परिवर्तनशील प्रवृत्ति में *अनिच्च* बोध अधिक सरलता से प्राप्त कर सकता है। यही वह मुख्य कारण है कि हमने *अनिच्च* के त्वरित बोध के लिए शारीरिक संवेदनाओं का एक माध्यम के रूप में चयन किया है। अन्य माध्यमों द्वारा प्रयास करने के लिये कोई भी स्वतंत्र है, किन्तु मेरा परामर्श है कि इसके पहले कि अन्य प्रकार की संवेदनाओं के माध्यम से कोई प्रयास किया जाय, व्यक्ति को शारीरिक संवेदनाओं के *अनिच्च* ज्ञान में अच्छी तरह स्थापित हो जाना चाहिए।

विपस्सना ज्ञान के दस स्तर हैं, अर्थात –

(१) *सम्मसन* (सम्मर्शन) – गहन अवलोकन तथा विश्लेषण द्वारा *अनिच्च, दुक्ख* एवं *अनत्ता* को सैद्धांतिक रूप से समझना।
(२) *उदयब्बय* (उदयव्यय) – *रूप* व *नाम* के उत्पाद एवं विघटन का ज्ञान।

(३) भंग – *रूप* और *नाम* के तीव्र परिवर्तनशील स्वरूप का ज्ञान, जैसे कोई त्वरित धारा प्रवाह या ऊर्जा प्रवाह हो।

(४) भय – इस तथ्य का ज्ञान कि यह वर्तमान अस्तित्व भयावह है।

(५) आदीनव – इस तथ्य का ज्ञान कि यह वर्तमान अस्तित्व बुराइयों से भरा हुआ है।

(६) *निब्बिद* (निर्वेद) – इस तथ्य का ज्ञान कि यह वर्तमान अस्तित्व घृणित है।

(७) *मुच्चितुकम्यता* (मुच्चितुकम्यता) – इस वर्तमान अस्तित्व से तत्काल पलायन की आवश्यकता का ज्ञान।

(८) *पटिसंखा* (प्रतिसंख्या) – इस तथ्य का ज्ञान कि मुक्ति प्राप्त करने के लिये पूरे एहसास के साथ, *अनिच्च* को आधार बनाकर काम करने का समय आ गया है।

(९) *संखार उपेक्खा* (संस्कार उपेक्षा) – इस तथ्य का ज्ञान कि संस्कारों से अलग हो जाने का तथा आत्मकेन्द्रण से संबंध विच्छेद कर लेने का अब मंचन हो चुका है।

(१०) अनुलोम – वह ज्ञान, जो लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रयास को तेज करेगा।

विपस्सना साधना काल में जिन उपलब्धियों से होकर व्यक्ति गुजरता है, उनके ये स्तर हैं, तथा जो लोग अपना लक्ष्य अल्पसमय में ही प्राप्त कर लेते हैं, वे सिंहावलोकन द्वारा ही इन स्तरों से अवगत हो पाते हैं। *अनिच्च* ज्ञान में प्रगति के साथ व्यक्ति उपलब्धियों के इन स्तरों से होकर गुजरता है; भले ही किन्हीं किन्हीं स्तरों पर किसी निपुण आचार्य द्वारा समायोजन या सहायता के आधार पर हो। व्यक्ति को किसी पूर्वानुमान के साथ इस प्रकार की उपलब्धियों को चाहने से बचना चाहिये, क्योंकि इससे वह *अनिच्च* की जागरूकता की निरंतरता से विचलित हो जायेगा, क्योंकि अकेले वही (*अनिच्च* ही) है जो वांछित लाभ दे सकता है, और देगा।

अब मैं एक गृहस्थ के लिये उसके दैनिक जीवन में विपस्सना साधना की चर्चा करता हूं तथा इसी जीवनकाल में, यहीं और अब होने वाले लाभों को समझाता हूं।

विपस्सना साधना का प्रारंभिक उद्देश्य व्यक्ति को स्वयं में *अनिच्च* को सक्रिय करना या स्वयं को *अनिच्चमय* अनुभव करना है तथा अंततः एक आंतरिक एवं बाह्य शांति और संतुलन की स्थिति को प्राप्त करना है। यह तभी उपलब्ध होता है, जब व्यक्ति अपने भीतर की *अनिच्च* की अनुभूति में निमग्न हो जाता है।

आज विश्व गंभीर समस्याओं का सामना कर रहा है – जो मानव जाति के लिये भयावह हैं। प्रत्येक व्यक्ति को विपस्सना साधना अंगीकार करने के लिये तथा आज जो सब कुछ हो रहा है, उसके बीच शांति का एक गहन कुण्ड कैसे ढूंढे, यह सीखने के लिये, यही सही समय है। *अनिच्च* सबके भीतर है। यह प्रत्येक व्यक्ति के साथ है। यह प्रत्येक व्यक्ति की पहुंच के भीतर है। स्वयं के भीतर मात्र एक दृष्टि डाली जाय, और वह वहीं है, – अनुभव हेतु *अनिच्च!* जब व्यक्ति *अनिच्च* का अनुभव कर सकता है, जब *अनिच्च* महसूस कर सकता है तथा जब *अनिच्च* में निमग्न हो सकता है, तब वह बाहरी सांसारिक विचारों से स्वेच्छया अलग हो सकता है।

गृहस्थ के लिए *अनिच्च* ही जीवन का रत्न है, जिसे वह अपने स्वयं के कल्याण हेतु तथा समाज के कल्याण हेतु, एक शांत एवं संतुलित ऊर्जा के कोष का सृजन करने के लिए संचित करेगा। जब *अनिच्च* का अच्छी तरह से विकास होता है, तो उससे शारीरिक एवं मानसिक बुराइयों के मूल पर प्रहार होता है तथा व्यक्ति में जो भी विकार हैं उनका, अर्थात इन शारीरिक तथा मानसिक बुराइयों के स्रोत का, शनैः शनैः उन्मूलन हो जाता है।

बुद्ध के जीवनकाल में *पसेनादि कोसल* (प्रसन्नजीत कौशल) के राज्य *सावत्थी* (श्रावस्ती) तथा उसके

परिवेश में कुछ ७ करोड़ लोग थे। इनमें से लगभग ५ करोड़ आर्य थे, जो *सोतापत्ति (*स्रोतापत्ति) की धारा में पारित थे। अत: विपस्सना साधना करने वाले गृहस्वामियों की संख्या और भी अधिक रही होगी।[2]

अनिच्च केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिये आरक्षित नहीं है, जिन्होंने बेघर जीवन जीने के लिए संसार का त्याग कर दिया हो। यह गृहस्थों के लिए भी है। उन कठिनाइयों के बावजूद, जो इन दिनों एक गृहस्थ को व्याकुल कर देती हैं, एक सक्षम आचार्य या गुरु अपेक्षाकृत कम समय में *अनिच्च* को जगाने में साधक की सहायता कर सकता है। एक बार जब उसने इसे सक्रिय कर लिया हो तो, उसके लिये यही आवश्यक है कि वह इसे बनाए रखने की कोशिश करे, किन्तु उसे अवश्य यह प्रयास करना चाहिये कि जैसे ही उसे आगे प्रगति करने के लिए समय या अवसर प्राप्त हो, वह विपस्सना के तीसरे चरण के ज्ञान, अर्थात भंग पद की प्राप्ति के लिए काम करे। यदि वह इस स्तर तक पहुँच जाता है, तो उसे बहुत कम या कोई समस्या नहीं होगी, क्योंकि बिना किसी अधिक कठिनाई के तथा लगभग स्वतः ही, तब उसे *अनिच्च* का अनुभव करने में सक्षम हो जाना चाहिए। इस स्थिति में, जैसे ही दैनिक जीवन की घरेलू आवश्यकताओं के रूप में उसकी सभी शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियां समाप्त होती हैं, उसे वापस आने के लिए *अनिच्च* उसका आधार बन जायेगा।

यद्यपि, जो अभी तक भंग की अवस्था तक नहीं पहुँच पाया है, उसके लिये कुछ कठिनाई आने की संभावना है। आंतरिक *अनिच्च* एवं काया के बाहर की शारीरिक और मानसिक गतिविधियों के बीच, उसके लिए यह एक रस्साकशी की तरह होगा। अत: उसके लिये, '*काम के समय काम करो, खेलते समय खेलो,*' इस आदर्श वाक्य का अनुसरण करना ही विवेकपूर्ण होगा। उसे हर समय *अनिच्च* को जगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसे दिन या रात में, इस प्रयोजन के लिए अलग से निर्धारित, नियमित अवधि या अवधियों तक ही सीमित रखना पर्याप्त होना चाहिए। कम से कम उस समय, मन/ध्यान को शरीर में *अनिच्च* पर बनाये रखने मात्र का प्रयास करना चाहिये, अर्थात उसका *अनिच्च* बोध क्षण-प्रति-क्षण बने रहना चाहिये, याने इतना निरंतर होना चाहिये कि किसी भी असंबद्ध अथवा विचलित करने वाले विचार का अंतर्वेशन न हो सके, जो कि निश्चित रूप से प्रगति में बाधक हैं।

यदि ऐसा संभव न हो, तो उसे वापस आनापान ध्यान की साधना में लग जाना होगा, क्योंकि समाधि ही *अनिच्च* की कुञ्जी है। अच्छी समाधि प्राप्त करने के लिए, शील अचूक होना चाहिये, क्योंकि समाधि शील के आधार पर ही निर्मित होती है। अच्छे *अनिच्च* बोध के लिए समाधि अच्छी होनी चाहिए। यदि समाधि उत्कृष्ट है, तो *अनिच्च* बोध भी उत्कृष्ट होगा।

चित्त को पूर्ण रूप से संतुलित कर, ध्यान को ध्यान की विषय वस्तु पर केन्द्रित करने के अतिरिक्त *अनिच्च* को सक्रिय करने के लिए कोई अन्य विशेष तकनीक नहीं है। विपस्सना में ध्यान की विषय वस्तु *अनिच्च* है, और इसलिए जो लोग अपना ध्यान शारीरिक संवेदनाओं में वापस लगाते रहने के अभ्यस्त हैं, वे सीधे *अनिच्च* का

---

2 धम्मपद अट्ठकथा, (१) यमक वग्ग, (२) चक्खुपालत्थेरवत्थु । **[**"*तदा सावत्थियं सत्त मनुस्सकोटियो वसन्ति । तेसु सत्थु धम्मकथं सुत्वा पञ्चकोटिमत्ता मनुस्सा अरियसावका जाता, द्वेकोटिमत्ता मनुस्सा पुथुज्जना।*] (अर्थात दो करोड़ लोगों ने आर्यपद प्राप्त नहीं किया था।)

अनुभव कर सकते हैं। शरीर पर या शरीर के अन्दर *अनिच्च* का अनुभव करते समय, पहले उस स्थान पर ध्यान ले जांय, जहां ध्यान में तल्लीनता प्राप्त करना सरल हो। ध्यान के क्षेत्र को बदलते हुये एक स्थान से दूसरे स्थान पर सिर से पैरों तक, और पैरों से सिर तक, कभी कभी शरीर के अंतरंग में अन्वेषण करते हुये ध्यान ले जांय। इस स्तर पर यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि शरीर की शारीरिक रचना पर कोई ध्यान नहीं देना है, अपितु सीधे भौतिक पदार्थ (कलापों) के गठन पर तथा उनकी निरंतर परिवर्तनशील प्रकृति पर ही।

यदि इन निर्देशों का पालन किया जाता है, तो प्रगति निश्चित रूप से होगी, किन्तु व्यक्ति की *पारमी* (पारमिताओं) पर और व्यक्ति की साधना में निष्ठा पर भी प्रगति निर्भर करती है। यदि वह ज्ञान के उच्च स्तर को उपलब्ध कर लेता है, तो *अनिच्च, दुक्ख* एवं *अनत्ता,* इन तीनों लक्षणों को समझने की उसकी शक्ति में संवर्धन होगा तथा वह तदनुसार आर्य लक्ष्य के समीप आता जाएगा, जिसपर प्रत्येक गृहस्थ की दृष्टि होनी चाहिए।

यह विज्ञान का युग है। आज के व्यक्ति काल्पनिक आदर्श नही चाहते। वे तबतक कुछ भी स्वीकार नहीं करेंगे, जब तक कि उसके परिणाम अच्छे, ठोस, ज्वलंत, व्यक्तिगत और यहीं-और-अभी न हों।

जब बुद्ध जीवित थे, तो उन्होंने कालामाओं से कहा[3] –

"तो कालामाओं, तुम देखो। किसी रपट या परंपरा या अफवाह से गुमराह मत हो। न तो संग्रहों में प्रवीणता से, दलील या तर्कसिद्धि से, न तो किन्हीं सिद्धांतों के पर्यवेक्षण के पश्चात उनके अनुमोदन से; न तो इसलिये कि यह अपने स्वभाव के अनुकूल है, और न ही किसी गुरु की प्रतिष्ठा तथा सम्मान के कारण पथभ्रष्ट हो।

किन्तु कालामाओं, जब तुम स्वयं जान जाओ कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें दोषपूर्ण हैं, इन बातों की बुद्धिमानों द्वारा निंदा होती है; इन बातों को व्यवहार में लाने तथा पालन करने से हानि एवं शोक होता है; तो तुम उन्हें अस्वीकार करो।

किन्तु किसी भी समय यदि तुम स्वयं जान जाओ कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें दोषहीन हैं, इन बातों की बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसा होती है; जब इन बातों को व्यवहार में लाया जाता है तथा इनका पालन किया जाता है, तो ये कल्याण एवं सुख के लिए अनुकूल होती हैं; तब कालामाओं तुम्हें उनका अभ्यास कर, उनके अनुसार जीना चाहिये।"

---

3 ''एथ तुम्हे, कालामा, मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन , मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरूति। यदा तुम्हे, कालामा, अत्तनाव जानेय्याथ – 'इमे धम्मा अकुसला, इमे धम्मा सावज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुगरहिता, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ती''ति, अथ तुम्हे, कालामा, पजहेय्याथ।

''एथ तुम्हे, कालामा, मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरूति। यदा तुम्हे, कालामा, अत्तनाव जानेय्याथ – 'इमे धम्मा कुसला, इमे धम्मा अनवज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुप्पसत्था, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना हिताय सुखाय संवत्तन्ती'ति, अथ तुम्हे, कालामा, उपसम्पज्ज विहरेय्याथ।"

– अंगुत्तर निकाय, तिक निपात, (७) महावग्ग, (५) केसमुत्ति सुत्तं

विपस्सना की घढ़ी का अब डंका बज गया है – अर्थात, बुद्ध धम्म के पुनरुद्धार के लिए विपस्सना की साधना। जो भी सच्चाई के साथ खुले दिमाग से किसी योग्य आचार्य के अंतर्गत एक विपस्सना प्रशिक्षण शिविर में भाग लेते हैं, उनके निश्चित परिणाम प्राप्त करने के विषय में हमें कोई भी संदेह नहीं है। मेरा तात्पर्य है कि ऐसे परिणाम जिन्हें अच्छा, ठोस, ज्वलंत, व्यक्तिगत, यहीं-और-अभी के रूप में स्वीकार किया जाएगा, ऐसे परिणाम जो उन्हें सुखी बनायेंगे तथा शेष जन्मों को कल्याणमय एवं आनन्दमय बनायेंगे।

सभी प्राणी सुखी हों,
तथा यह विश्व, शान्ति से ओतप्रोत हो ।